ईश-आराधना : गुरुदेव की दृष्टि में

श्री स्वामी चिदानन्द

अनुवादक

श्री स्वामी अर्पणानन्द सरस्वती

प्रकाशक

द डिवाइन लाइफ सोसायटी

पत्रालय : शिवानन्दनगर-२४९१९२

जिला : टिहरी-गढ़वाल, उत्तराखण्ड (हिमालय), भारत

www.sivanandaonline.org, www.dlshq.org

प्रथम संस्करण : २०१४
(२,००० प्रतियाँ)

द डिवाइन लाइफ ट्रस्ट सोसायटी

Swami Chidananda Birth Centenary Series—14

निःशुल्क वितरणार्थ

'द डिवाइन लाइफ सोसायटी, शिवानन्दनगर' के लिए
स्वामी पद्मनाभानन्द द्वारा प्रकाशित तथा उन्हीं के द्वारा 'योग-वेदान्त
फारेस्ट एकाडेमी प्रेस, पो. शिवानन्दनगरह्वह्व२४९१९२,
जिला टिहरी-गढ़वाल, उत्तराखण्ड' में मुद्रित।
For online orders and Catalogue visit : dlsbooks.org

ईश-आराधना : गुरुदेव की दृष्टि में *

''मेरे विचार में ईश्वर की सच्ची पूजा-आराधना है जिज्ञासुओं और साधकों की निष्काम सेवा। इनकी जिज्ञासा की पिपासा को शान्त करना ही मेरी योग-साधना है और इसी में आत्म-साक्षात्कार है। सब-कुछ इसी में निहित है।''

स्वामी शिवानन्द

विशिष्ट पूजा-पद्धति

समूचे भारत मेंह्वह्वकैलास के शिखर से ले कर कन्याकुमारी पर्यन्तह्वह्वश्रद्धालु हिन्दुओं की पूजा, उपासना की पद्धति एक-सी ही है और वह हैह्वह्वझाँझ-मंजीरे, घण्टे-घड़ियाल आदि को मधुर ताल-सहित बजा कर, शास्त्रानुसार श्लोकों का सस्वर उच्चारण करते हुए कपूर की सुगन्धित ज्योति से सुव्यवस्थित ढंग से देवता की आरती उतारना। पारसी लोगों की उपासना-पद्धति इससे भिन्न है। वे पवित्र ज्योति के सम्मुख प्रभावशाली व्यक्तित्व से सम्पन्न पुरोहित तथा गाउन व कैप पहने भक्त जनों की व्यवस्थित सभा में 'जेन्द अवस्ता' में से 'अहुरमज़्दा' की महिमा का गान करते हैं। घुटनों के बल बैठ कर ईसाई लोग 'हे परम पिता!' कहते हुए क्रॉस

---

*इस पुस्तिका की विषय-सामग्री **'लाइट फाउन्टेन'** (**आलोक-पुंज)** से संकलित की गयी है, जिसकी रचना १९४३-१९४४ में की गयी थी, जब प.पू. श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज सशरीर विराजमान थे। इसी कारण पुस्तिका में वर्तमान काल की क्रियाओं का प्रयोग है।

का आकार बना कर हार्दिक पूजा-भावना को मूक रूप से अभिव्यक्त करते हैं। पूजा-स्थल मोमबत्तियों के प्रकाश से जगमगा रहा होता है। वाद्यवृन्द पर हृदय को आह्लादित करने वाले गम्भीर और मधुर स्तोत्रों का गायन होता है। दूसरी ओर हम देखते हैं कि पश्चिम की ओर मुख किये हुए इस्लाम-धर्म का प्रार्थी घुटनों पर बैठ निमग्न हो करुणावरुणालय भगवान् को रिझाता है। इस प्रकार प्रत्येक पूजा-स्थल में उस एक ही दिव्य शक्ति की उपासना विभिन्न धर्मानुयायी अपने-अपने ढंग से सम्पन्न करते हैं।

परन्तु इन सौभाग्यशाली कीह्वह्वजिन्हें भगवत्कृपा से अन्तर्दृष्टि प्राप्त हो गयी है, आत्मसाक्षात्कार प्राप्त गुरुदेव की आराधना की पद्धति अपने ही ढंग की है। इस प्रकार स्वामी जी की सर्वोत्तम पूजा-पद्धति नेह्वह्वबाह्य रूप में 'दिव्य जीवन संघ' का रूप धारण किया है। उनके विचार में महती पूजा सबको इस तथ्य से अवगत कराना है कि वे दिव्य शक्ति की सन्तान हैं। वास्तविक दिव्य पूजा का अर्थ भी यही है। स्वामी जी का मत हैह्वह्व''मानव के अन्तर में दिव्यत्व को जगाना तथा उसे दिव्य बनाना ही सच्चे अर्थों में मानव-सेवा है। शेष तो इसी सेवा-पूजा के अंग मात्र हैं।''

मानव की सुप्त दिव्यता को जगाना, माया के भ्रमात्मक आवरण को हटाना तथा मानवता को अपने दिव्य आत्म-तत्त्व के दर्शन कराना ही स्वामी जी के आराधनामय जीवन का प्रमुख ध्येय है। 'दिव्य जीवन संघ' की स्थापना का मूलमन्त्र यही है और इसका परम आदर्श भी यही है।

स्वामी जी की पूजा-पद्धति में शास्त्रानुकूल उपासनाह्वह्वजैसे अर्चना, स्तुतिगान, अगरबत्ती, धूप, दीप, आरती आदि भी सम्मिलित हैं, पर इनका स्वरूप भिन्न है। ज्ञान-निधि से परिपूरित अनेक पुस्तकें, व्यावहारिक साधना के लिए संकेत-रूप में परिपत्र तथा सहस्रों **जिज्ञासुओं को लिखे गये अनेक प्रेरणादायक पत्र ही उनकी पूजा की विलक्षण सामग्री हैं।**

प्रत्येक पुस्तक ही मानो देवता को अर्पित की गयी **पुष्पमाला** है; प्रत्येक लघु पुस्तक ही छोटा-सा **सुगन्धित पुष्प** है; अर्चना तथा मानव को उत्तिष्ठित करने वाले लेखों का सतत प्रवाह ही मानो **धूप की सुगन्धि** है। प्रोत्साहन, आश्वासन, उपदेश, पथ-प्रदर्शन, शिक्षा और परामर्श के रूप में लिखे गये पत्रों का अविरल प्रवाह ही मानो (मैं ऐसा ही सोचता हूँ) उपासक कीह्वह्वजिसका हृदय दिव्य प्रकाश से युक्त हैह्वह्वअपने इष्टदेव के प्रति **शाश्वत उल्लासमयी जय-जयकार है**।

पूजा -मण्डप की शोभा

विराट्-पूजा के इस पुजारी के विशिष्ट पूजा-मण्डप की शोभा का तो क्या ही कहना है। इसकी साज-सज्जा तो विशेष उल्लेखनीय है। यह आश्रम परम भाग्यशाली है। पवित्र भागीरथी के तीर पर स्थित, हिमालय की पहाड़ी पर बसा हुआ यह आश्रम प्रकृति की क्रीड़ास्थली-सा प्रतीत होता है। यहाँ पर आये साधकों, जिज्ञासुओं, अतिथियों, परिचितों, प्रशंसकों, भक्तों, तीर्थ-यात्रियों तथा रोगियों तक की भी निष्काम भाव से सेवा-पूजा होती है। विशेष रूप से साधना-सप्ताह तथा अन्य सामयिक उत्सवों में केवल कार्यकर्ता ही नहीं, अपितु स्वामी जी स्वयं भी अभ्यागतों की सेवा-पूजा में तन-मन अर्पण कर देते हैं।

प्रख्यात आनन्द-कुटीर में लोग भक्ति-भावना से इन महात्मा के दर्शन व आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए आते हैं, पर यहाँ पहुँचने पर इन वैभवयुक्त, सुडौल सुगठित तेजस्वी सन्त के उत्कण्ठित सेवा-व्यवहार को देख कर दर्शनार्थी चकित हो कर दुविधा में पड़ जाता है मानो स्वामी जी ही दर्शनार्थी हों। यद्यपि स्वामी जी की उपस्थिति सदैव दिव्यता और शान्ति प्रदान करने वाली होती है, तथापि उनकी प्रत्येक गतिविधि, प्रत्येक शब्द और क्रियाकलाप यही कहता हुआ प्रतीत होता है कि मैं आपका सेवक हूँ।

स्वामी जी जब आश्रम में ठहरे अभ्यागतों-दर्शनार्थियों की व्यक्तिगत रूप से देखभाल करते हैं, तो यह दृश्य अपूर्व होता है। स्वयं एक प्रसिद्ध दार्शनिक अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति-प्राप्त लेखक, प्रशिक्षक, समग्र देश के शीर्षस्थ लोकप्रिय सुधारक और एक महान् विशाल संघ के प्रधान संस्थापक होते हुए भी स्वामी जी अपने-आपको सदैव उस **विराट् स्वरूप का सेवक एवं उपासक ही मानते हैं।**

स्वामी जी की सेवा में तत्पर दर्जनों सेवक एक ही संकेत पर आज्ञा-पालन के लिए सन्नद्ध रहते हैं, तो भी कभी-कभी ऐसा होता है कि एक थके-माँदे अतिथि के लिए स्वामी जी स्वयं हाथ में दूध का गिलास लिये कुटीर से आ कर उपस्थित हो जाते हैं। इतना ही नहीं, फल भी अपने थैले से निकाल कर देते हैं। यदि वे देखते हैं कि दर्शनार्थी संकोची प्रकृति का है और अपनी आवश्यकताओं को प्रकट करने में झिझकता है, तो स्वामी जी उसकी आवश्यकताओं को भाँप लेते और उसके कहने के पूर्व ही उसकी पूर्ति करने को किसी एक आश्रमवासी को कहते तथा सविस्तार सब बातें समझा देते ताकि उसको किसी प्रकार की कठिनाई न हो। सायंकालीन भ्रमण के समय भी स्वामी जी फल तथा खाने की अन्य सामग्री व पुस्तक आदि अपने साथ रखने के अभ्यस्त हैं, जिनको देने के लिए वह स्वयं अभ्यागतों के कक्षों में चले जाते हैं। मध्याह्न में भी अपनी कुटीर को जाते हुए यदि मार्ग में किसी साधु को आश्रम द्वारा परोसी गयी भिक्षा ग्रहण करते देख लेते, तो उसकी सुविधा के लिए वे बन्दरों को दूर भगा देते और उसके हाथ धुलाने के लिए स्वयं जल देने लग जाते। ऐसे अवसर पर आप कितना ही उन्हें यह सब करने के लिए मना करें, पर वे सेवा के सुअवसर को हाथ से भला क्यों जाने दें!

जब भी कोई भक्त इनको फल और मिष्टान्न भेंट-स्वरूप भेजता, तो तत्काल ही उस सामग्री को उपस्थित दर्शनार्थियों में बाँटना आरम्भ कर देते। आश्रम के बालक, सेवक, नाई, पोस्टमैन, पथिक, भिक्षुक, यहाँ तक

कि यदि मेहतर भी वहाँ उस समय होता, तो सबको एक-समान ही भाग मिलता। विशेष अवसरों पर जब विशाल भोज का आयोजन होता, तो हलवाई को किसी विशिष्ट वस्तु को बनाये अभी आधा घण्टा ही बीता होता कि स्वामी जी माँ गंगा को शीघ्रता से थोड़ा-सा अर्पण कर जितना भी तैयार होता, उसी को ले कर आस-पास बाँटना आरम्भ कर देते हैं।

वे केवल देना ही जानते हैं। बाँटना भी एक हाथ से नहीं, दोनों हाथों से। बाँटने के उत्साह में तो वे बच्चे और बड़े का अन्तर ही भूल जाते हैं। प्यारे-प्यारे बच्चों के छोटे-छोटे हाथों को वे इतना अधिक भर देते हैं कि वह अकेला उस कृपा-प्रसाद को सँभाल ही नहीं पाता है, उठा कर ले जाने की बात तो दूर रही। एक रूढ़िवादी संन्यासी जब इनको अपने भक्तों की सेवा में तत्पर देखता है, तो वह एकाएक आश्चर्य में डूब जाता है। अतिथि यह सोचता है कि स्वामी जी का समस्त समय और ध्यान उस पर ही केन्द्रित है और स्वामी जी उसी का सर्वाधिक ध्यान रखते हैं। जैसे ही उसको रहने के लिए कमरा मिलता है, तुरन्त ही कई सेवक उसकी आवश्यकताओं पूर्ति अथवा सुख-सुविधा या आराम पहुँचाने हेतु वहाँ पहुँच जाते हैं। पानी का प्रबन्ध उसके कमरे में पहले ही से होता है। प्रकाश के लिए लैम्प तत्काल पहुँचा दिया जाता है (उन दिनों आश्रम में बिजली नहीं थी)। गरमी के दिनों में तुरन्त मच्छरदानी और सर्दी के दिनों में एक या दो अतिरिक्त कम्बल इत्यादि दे दिये जाते हैं। यदि अतिथि वृद्ध या रोगी होता है, तो एक आरामप्रद कुर्सी भी तैयार रहती है। स्वामी जी पुस्तकालय के प्रबन्धक को उसकी रुचि अनुसार पुस्तक भी देने को कहते हैं। ये सब वे उसे भगवत्स्वरूप समझ कर करते हैं और आध्यात्मिक साहित्य द्वारा उसकी आत्मा की भूख मिटाने का पूरा ध्यान रखते हैं। उनके आतिथ्य-सत्कार-भाव में यह सेवा प्रमुख है।

बंगलोर से आये एक भक्त को जब गंगा जी में स्नान करने से सर्दी एवं ज्वर हो गया, तब स्वामी जी रात के समय उसके कमरे में उसका हाल पूछने

स्वयं गये और पूछताछ की कि उसको ठीक दवाई मिली या नहीं, उसने दवाई खायी भी कि नहीं और अब उसका क्या हाल है? अभी पिछले दिनों एक दर्शनार्थी किसी कारण अस्वस्थ था और अपने कमरे में ही था। श्री विश्वनाथ मन्दिर की सायंकालीन पूजा–आरती के पश्चात् कमरे में अपने सामने अचानक आरती का थाल देख कर आश्चर्यचकित रह गया। स्वामी जी किसी भी बात से चूकते नहीं हैं। यही कारण था कि उस रोगी के लिए एक सेवक को विशेष रूप से नियत किया और समझाया कि आरती के थाल के साथ कपूर की एक टिक्की भी ले जाया करे। ध्यान देने की बात तो यह है कि कई बार दर्शनार्थियों में से कई ऐसे अपरिचित होते हैं जिनसे आश्रम में कुछ दिन वास करने के पश्चात् जीवन–भर कभी मिलन नहीं हो पाता।

स्वामी जी की इस हार्दिक अतिथि–सत्कार की भावना की पराकाष्ठा देख कर दर्शनार्थी विस्मित हो कर कह उठता हैह्नह्न''इस विषय में स्वामी जी के समक्ष हम लज्जित हो जाते हैं। वे हम गृहस्थियों को सच्चे अतिथि–सत्कार का पाठ पढ़ाते हैं। अतिथि–सत्कार की कला में स्वामी जी स्वयं ही पूर्ण हैं। हम अनुभव करते हैं कि उनसे हमें कई शिक्षाएँ लेनी हैं। गृहस्थी हो कर हम सोचते हैं कि हमारे लिए कुछ और सीखने की बात है ही नहीं, पर स्वामी जी के अतिथि–सत्कार के आदर्श को देख कर हमें लगता है कि हमें इस आदर्श–मूर्ति का पूर्णरूपेण अनुकरण करना चाहिए।''

धार्मिक और आध्यात्मिक संस्थाओं के लिए तथा जन–सामान्य के प्रति यदि शिष्टता, प्रेम और विनम्रता का व्यवहार किया जाये, तो जन–साधारण के लिए ऐसा आदर्श अनुकरणीय बन जायेगा। इन संस्थाओं का मूल उद्देश्य भी यही है। अतः जनता के सहयोग के लिए जनता को प्रभावित करना है जिससे संस्थाओं के मुख्य कार्यह्नह्नजैसे जन–साधारण के हृदय में आध्यात्मिकता का बीजारोपण और नास्तिकता तथा प्रमाद का विनष्टीकरण सुगमता से हो सके। धार्मिक संस्थाओं के निष्काम सेवकों को

विनम्र और स्नेहिल होना चाहिए जिससे कि नास्तिक और आलोचक का हृदय भी परिवर्तित हो जाये। इस हार्दिक सद्भावना के आदान-प्रदान में ही आध्यात्मिक संस्थाओं के दिव्य कार्यों का वैभव है।

इस आश्रम का अतिथियों तथा दर्शनार्थियों के प्रति व्यवहार लोगों की आँखें खोलने वाला है, इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं है। आश्रमवासी तथा इससे सम्बन्धित समस्त व्यक्तियों को इस बात का गौरव है। ये सदैव अपने साधकों को दर्शनार्थियों के प्रति विनम्र रहने की शिक्षा देते हैं तथा सिखाते हैं कि सेवा-भाव में सदैव सजगता, दयालुता, मृदुता तथा तत्परता दिखानी चाहिए। इसी का फल है कि यहाँ अतिथियों का सहर्ष स्वागत होता है तथा उनके साथ स्नेहिल व्यवहार होता है।

स्वामी जी सदैव कहते हैं—''यदि आप सबमें आत्म-भाव रखने का प्रयत्न करते हो अथवा सबमें उस वासुदेव के ही दर्शन करते हो 'वासुदेवः सर्वमिति' और 'सर्वं विष्णुमयं जगत्' के सिद्धान्त में विश्वास रखते हो, तो अपने आचरण में इसी भाव का प्रकटीकरण करो। यहाँ ठहरने वालों को आध्यात्मिकता की प्राप्ति हो अथवा न हो; पर जब तक वे यहाँ ठहरें, उन्हें वास्तविक शान्ति का आनन्द अवश्य हो। क्योंकि बाद में जब कभी वे यहाँ प्राप्त होने वाले इस दिव्य प्रेम और दया का स्मरण करेंगे तो उन्हें यहाँ से सम्बन्धित दिव्य शान्ति, माँ गंगा, संकीर्तन तथा आध्यात्मिक उपदेशों का स्वतः स्मरण आ जायेगा। इसलिए सबकी भावपूर्वक सेवा करो। धार्मिक संस्थाओं और मठों को सात्त्विक भाव, निष्काम सेवा और निःस्वार्थ प्रेम का आदर्श प्रस्तुत करना चाहिए।''

निस्सन्देह एक ऐसे व्यक्ति को जिसके हृदय में योगी और संन्यासी के लिए केवल पारम्परिक या पुस्तकीय संकल्पना है, इसमें बहुत कुछ विचित्र प्रतीत होता है। स्वामी जी की आतिथ्य-भावना और आदर्श-आचरण का मर्म समझने का प्रयत्न करें, तो स्पष्ट हो जायेगा कि वे यह सब लोकाचार

हेतु नहीं करते। शिष्टाचार का भाव तो केवल प्रसंगवश है। **प्रधान तथ्य तो यह है कि उच्चादर्श ही उनके सेवा-पूजा-कार्यों के प्रेरक हैं। कर्मकाण्डी की पूजा की भाँति इनकी आराधना भी सूक्ष्मातिसूक्ष्म भावों को ले कर ही होती है, तभी तो उसमें किसी प्रकार की सावधानी व कुशलता-सम्बन्धी त्रुटि देखने में नहीं आती।**

सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ध्यान केन्द्रित करने वाली बात तो यह है कि स्वामी जी अपने इस दयालु व्यवहार से व्यक्ति का हृदय जीत कर उसको प्रत्यक्षतः एक नव-उन्नत रूप में परिवर्तित कर लौटाते हैं। उस व्यक्ति का दृष्टिकोण एकाएक बदल जाता है। वे उसकी स्थिति और सामर्थ्यानुसार उसमें अज्ञात शक्ति भर कर विदाई देते हैं। इस विलक्षण कृपा का रूप अनोखा ही है। वह दर्शनार्थी अब कुछ कीर्तन-ध्वनियों को गा लेता है, कुछ आसन और साधारण प्राणायाम का अभ्यास कर लेता है और अल्प जन-समुदाय के समक्ष दो बार भाषण दे लेता है। लिखित जप, आध्यात्मिक डायरी तथा सुव्यवस्थित दिनचर्या का भी कुछ अभ्यास करवा दिया जाता है। ध्यान, स्वाध्याय और प्रार्थना की कक्षा के संचालन का प्रशिक्षण भी प्राप्त कर लेता है। संक्षेप में जब तक वह अतिथि विदाई लेता है, तब तक वस्तुतः वह दिव्य विचारों और आध्यात्मिक साधनों का प्रचार-प्रसार करने का सशक्त केन्द्र बनने में समर्थ हो जाता है।

स्वामी जी का यह प्रशिक्षण आधुनिक युग की अद्यतन युद्धकालीन पद्धति के तुल्य है। थोड़े ही समय में तीव्रता से, गहराई से यह शिक्षण उसी प्रकार मिलता है जैसे आकस्मिक युद्धकालीन स्थिति में तकनीकी प्रशिक्षार्थियों को विशेष केन्द्रों में विशेष प्रशिक्षण प्राप्त होता है। एक सप्ताह अथवा दश दिनों के अल्प समय में ही अभ्यागत साधक संक्षेप में किन्तु स्पष्ट रूप से बहुत-सी बातों का शिक्षण प्राप्त कर लेता है। इस द्रुत 'सद्यो पूजा' काह्वह्वजैसा कि मैंने इसको नाम दिया हैह्वह्वढंग उस संक्षिप्त पूजा से मिलता है जो कि दक्षिण भारत के निवासी उत्सवों पर अपने स्थानीय देवता

की शोभा-यात्रा के अवसर पर करते हैं। देवता से सुसज्जित पालकी मार्ग में आये भक्तों के घरों के सम्मुख रोक दी जाती है। वे भक्त संक्षिप्त अर्चना कर नैवेद्य और आरती अर्पित करते हैं। तब पालकी आगे बढ़ जाती है।

जब किसी ने परिहास में इस प्रशिक्षण की समानता आकस्मिक युद्ध-व्यवस्था के प्रशिक्षण से की, तो स्वामी जी तुरन्त बोल उठेह्न ''हाँ! हाँ!! क्यों नहीं! आज के युग में संक्षिप्त और मृदु नीति ही अपनानी चाहिए। परम्परागत पवित्रता का लोप हो चुका है। समयाभाव के कारण लोग उस परम्परा को नहीं निभा पाते। स्थिति के अनुकूल ही प्रत्येक विषय का सामंजस्य होता रहना चाहिए। जीवन क्षण-भंगुर हैह्न दिनों और वर्षों के बीतने का पता ही नहीं चलता। अतः मैं अपने पास आये भक्तों को उनके स्वभावानुकूल तथा उनकी स्थिति विशेष के अनुसार शीघ्रातिशीघ्र प्रशिक्षण दे देता हूँ।''

आराधना की विशेष विधि प्रार्थना

हममें से वे लोग जो ऐसी स्थिति में हैं कि न तो वे सेवा के क्षेत्र में हैं और न जिनको निष्काम सेवा का सुअवसर ही मिलता है, उनके सामने स्वामी जी के जीवन का यह प्रार्थना एक ऐसा अल्प-परिचित पक्ष है जो प्रेरणा और महानता की सम्पदा से परिपूर्ण है। इनकी दृष्टि में प्रार्थना आराधना की एक विशेष विधि है। परहित हेतु गुप्त रूप से सतत प्रार्थना करना उनका अभ्यास है। जो लोग ठोस सेवा करने में अशक्त हैं, उन्हें सदैव, सर्वत्र, सभी अवसरों पर सबके हित के लिए प्रार्थना करनी ही चाहिए। सभी प्राणियों के हित एवं कल्याण के लिए प्रार्थना आरम्भ कर देनी चाहिए। जिनको सहायता की आवश्यकता है, उन सबको हम अपनी निष्काम प्रेम की भावनाओं से रहस्यमय ढंग से सेवा कर सकते हैं। अपने-आपमें यह एक उत्कृष्ट सेवा है।

प्रेम का अभिव्यक्त स्वरूप हैद्धद्धसेवा जो इनकी विराट् पूजा का अंग है। व्यक्ति में विकसित यह असीम प्रेम विश्व-हित की दृढ़ सकारात्मक चाह से द्विगुणित होने पर प्रभावी एवं उच्च कोटि की सेवा का रूप धारण कर लेता है। स्वास्थ्य एवं सहयोग का हमारा ऐसा स्पन्दन ही सूक्ष्म तथापि अधिक सशक्त रूप से सामान्य हित-साधन करेगा। स्वामी जी अब भी इसको अभ्यास में प्रतिदिन लाते हैं। मैंने देखा है कि वे निरपवाद रूप से सबके लिए प्रार्थना करते हैं। यदि वे किसी रुग्ण व्यक्ति को देखते हैं, तो तत्क्षण उसकी स्वस्थता के लिए प्रार्थना करते हैं। किसी की मृत्यु के शोक-समाचार को सुनते ही दिवंगत आत्मा की शान्ति के लिए वे तुरन्त प्रार्थना करेंगे। लँगड़ाते कुत्ते को देख कर प्रार्थना उनके हृदय से प्रस्फुटित हो उठती है। उनकी उपस्थिति में किसी के पाँव से यदि चींटी कुचल जाती है, तो तत्काल ही उनका हृदय मूक भाव से प्रार्थना करने लग जाता है।

किसी से अन्य व्यक्ति की अस्वस्थता का समाचार जानने पर स्वामी जी उस अपरिचित व्यक्ति के आरोग्य एवं स्वास्थ्य के लिए प्रार्थना करने लग जाते हैं। जब कभी उनके अपने दो शिष्य परस्पर असहमत होने पर उत्तेजना में कुछ अपशब्द कह बैठते, तो स्वामी जी बिना किसी को बताये उस दिन निराहार रह कर दोषी व्यक्ति के लिए प्रार्थना करने लग जाते। प्रार्थना करने का सतत अभ्यास उनके जीवन का इतना आधार बन गया है कि वह स्वामी जी के अस्तित्व से अभिन्न हो गया है।

स्वामी जी प्रार्थना में निष्कपटता और प्रामाणिकता के प्रति प्रबल आस्थावान् हैं। एक बार एक प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा थाद्धद्ध''हाँ, प्रार्थना में अमित प्रभाव है। निष्कपटता से की गयी प्रार्थना सब-कुछ करने में समर्थ है। यह तुरन्त सुनी जाती है तथा तत्काल फलवती होती है। अपने नित्य-प्रति के संघर्षयुक्त जीवन में प्रार्थना करें तथा अपने लिए महान् प्रभाव की अनुभूति कीजिए। प्रार्थना जिस ढंग से करना चाहें, करें। शिशुवत् सरल बनिए। निष्कपट बनिए। तभी आप सब-कुछ प्राप्त करेंगे।''

उन्होंने अपने इसी जीवन में इसको प्रमाणित कर दिखाया है। मुझे इसमें किंचित् भी सन्देह नहीं है। स्वामी जी के पास देश-भर से आने वाले असंख्य पत्रों को पढ़ने का सौभाग्य मुझे मिला हुआ था। यह कहना अत्युक्ति न होगा कि भारत के कोने-कोने से लोग उनसे पत्र-व्यवहार करते हैं। मैंने पाया कि स्वामी जी के पास प्रतिदिन आने वाले असंख्य पत्रों में किसी व्यक्ति के लिए प्रार्थना करने का निवेदन होता था। कभी किसी की रोग-मुक्ति के लिए, कभी नव-विवाहित दम्पति की सुख-समृद्धि के लिए अथवा नवजात शिशु की मंगल-कामना के लिए निवेदन होता था। कोई पेचीदे कार्य में सफलता प्राप्त करने हेतु प्रार्थना के लिए अनुनय करता है। स्वामी जी द्वारा की गयी प्रार्थनाओं के रहस्यात्मक प्रभाव के प्रति कृतज्ञतापूर्ण प्रमाण-पत्र अनिच्छित होने पर भी आते रहते हैं।

इसे आप आत्म-विश्वास का फल कहिए या मनोचिकित्सा-सम्बन्धी नियम या कुछ भी कहिए, ठोस वास्तविकता तो यही है कि यह एक यथार्थ है। हाल ही में लगातार तीन दिन आवश्यक तीन तार आये। उन तीनों में मालाबार के फैरोकी (Feroke) निवासी गोपाल एम. नामक दीर्घकालीन रोगी की ओर से प्रार्थना के लिए विनय की गयी थी। ऐसी असंख्य घटनाएँ हैं जिनको देख कर संशय करने का साहस ही नहीं होता कि स्वामी जी का प्रार्थना-विषयक दृढ़ अभिमत उनके निजी अनुभवों और प्रयोगों पर आधारित है। प्रार्थना के कट्टर व आस्थावान् समर्थक गान्धी जी को नवयुग का महान् विचारक माना जाता है, यदि प्रार्थना प्राचीन परिपाटी मात्र ही होती, तो गान्धी जी की विवेचनात्मक बुद्धि, जिसकी श्रेष्ठता प्रश्नातीत है, इसको निःसंकोच ठुकरा देती। जो प्रार्थना को तुच्छ एवं असंगत समझते हैं, उन्होंने कभी विचार ही नहीं किया कि प्रार्थना क्या है और कैसे क्रियाशील होती है?

परजनों के लिए प्रार्थना एक प्रकार से भलाई चाहने का उत्कट भाव है। सबकी भलाई के लिए निरन्तर चिन्तन करने का यह निःस्वार्थ भाव

प्रार्थनापूर्ण हृदय में विशुद्ध प्रेम की धारा प्रवाहित करता है। विशुद्ध अहैतुकी प्रेम वस्तुतः स्वयं में ईश्वर है। प्रेम दिव्यता का सारतत्त्व है। अतः आकाश-मण्डल में प्रार्थना दिव्यता की धारा प्रवाहित करती है और जहाँ इसकी आवश्यकता पड़ती है, यह तरंगें-लहरियाँ अपनी अनुग्रह-शक्ति से वहाँ पहुँच कर क्रियाशील होती है। विश्व के एक कोने के एक अँधेरे कक्ष की मेज पर बैठा हुआ व्यक्ति जब बटन दबा कर तत्काल अपना सन्देश सहस्रों मील दूर भेजने में समर्थ होता है, तब प्रार्थना के विधायक प्रभाव को सरलता से समझा जा सकता है। मानव में अन्तर्निहित मानसिक एवं अतिमानसिक शक्तियों को मानव-क्रियाओं के निर्धारण में सशक्त कारक के रूप में तेजी के साथ मान्य किया जा रहा है।

स्वामी जी इस दृढ़ विश्वास से इतने आपूरित हैं कि कोई भी पर्यवेक्षक जो निरीक्षण में विशेष उत्सुक है, जान जायेगा कि उन्होंने प्रत्येक सम्भव कार्य और अवसर-प्रसंग को प्रार्थना के कार्य से संयुक्त किया हुआ है। मैंने देखा है कि जो-कुछ उनके अपने द्वारा या उनके मार्ग-दर्शन से अन्यों द्वारा सम्पन्न होता है, उन सबका शुभारम्भ व उपसंहार प्रार्थना द्वारा ही होता है। यदि किसी कमरे का निर्माण हो रहा होता है, तो सभी कर्मचारी नन्हें दीप के चारों ओर एकत्र हो कर पहले भगवद्-कीर्तन तथा प्रार्थना करते हैं और तब कार्य प्रारम्भ करते हैं। यदि किसी द्वारा प्रेषित संगमरमर की प्रतिमा पहुँचती है, तो तुरन्त ही प्रार्थना की जाती है।

साधुओं को दिये गये भोज के अवसर पर प्रार्थना भी उस समारोह का अभिन्न कार्यक्रम होता है। पैकेट और पत्रिकाओं को डाक में भेजने के लिए बाँधते और लपेटते समय स्वामी जी कर्मचारियों को बताते हैं कि हाथों से कार्य करते हुए भगवद्-गुणगान करो। रात्रि-सत्संग में गम्भीर मौन के पश्चात् विश्व-शान्ति के लिए विश्व-प्रार्थना की जाती है।

विराट् पूजा का माध्यम

दिव्य जीवन के सिद्धान्तों, जिनकी अब तक बहुत उपेक्षा हो चुकी थी तथा इहलोक में रह कर अलौकिक अनुभव करने के सन्देशों का स्वामी जी ने सरल अँगरेजी भाषा को माध्यम बना कर देश के कोने-कोने में व्यवस्थित ढंग से प्रसार आरम्भ किया। पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के प्रभाव में आ कर अपने देश की महानता को भूल कर जिन महत्त्वपूर्ण उच्चादर्शों के ज्ञान की अवहेलना हो रही थी, उसका स्मरण लोगों को अनवरत रूप से कराते रहे।

संस्कृत के बहिष्कार से स्वदेशी साहित्य पर जो कुठाराघात हुआ, वही मानो पर्याप्त न था। विदेशियों के आगमन से ऐसे विचार और परम्पराओं को मान्यता मिली कि भारतीय संस्कृति और राष्ट्रीय आध्यात्मिक प्रतिभा के मूल्यों की अवहेलना होने लगी। भारतवासियों का दृष्टिकोण ही व्यावसायिक और धनोपार्जन का हो गया था। रूढ़िवादी परिवार जो विदेशी रोग से अछूते रहे, वे अब भी परम्परानुसार ज्योतिष-गणना, नक्षत्र-विद्या, कर्मकाण्ड आदि द्वारा पुरोहित तथा शास्त्री के रूप में जीवन-निर्वाह करते थे या वे पण्डित गण थे जो शास्त्रार्थ करने व व्याकरण के ज्ञाता थे। अतः आध्यात्मिकता की सर्वत्र दुःखद स्थिति हो गयी थी।

प्रत्येक सम्भव मार्ग से, प्रत्येक विधि से स्वामी जी ने देश-भर को आध्यात्मिक ज्ञान-धारा से आप्लावित कर दिया। स्वामी जी ने सहस्रों लोगों को जीवन-प्रदायक तथ्यों ईश्वर, धर्म, नैतिकता व सदाचार तथा आध्यात्मिकता के विस्तृत ज्ञान आदि से परिचित कराया। नित्य सत्य का विषय जो देवनागरी लिपि में आबद्ध था, उसका सुगम अँगरेजी में इस तरह प्रचार किया कि हाईस्कूल का किशोर भी बिना किसी कठिनाई से प्रथम पाठन में ही समझ सकता था।

उपनिषद्, योग-सूत्र, श्रीमद्भागवत, रामायण, महाभारत व गीता और योगवासिष्ठ आदि के ज्ञान को जन-जन तक पहुँचाने का कार्य स्वामी जी लगभग पिछले १५ वर्ष से कर रहे हैं। उनके ही भरसक प्रयत्नों का फल है कि ब्रह्मचर्य जैसे विषय को देश के विद्यार्थी और तरुण वर्ग के लिए उचित महत्त्व प्राप्त हुआ है। स्वामी जी को अपनी रचनाओं द्वारा गृहस्थियों को आदर्श जीवन-यापन का पाठ पढ़ाने में सफलता मिली। बहुत से गृहस्थी आज भी इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं।

उन्होंने देश-भर के सामने यह स्पष्ट कर दिया कि मानव-जीवन का एकमात्र लक्ष्य ईश्वर-साक्षात्कार है। मानव-जीवन का यही सर्वोच्च उद्देश्य है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए व्यावहारिक साधना के विस्तृत ज्ञान का संग्रह कर उनको विभिन्न ढंगों में विभाजित करके जनता के सामने बड़े प्रभावशाली सीधे-सादे परन्तु व्यवस्थित एवं अनुपम ढंग से उन्होंने प्रस्तुत किया। आध्यात्मिक ज्ञान के प्रचारक, जनता में जाग्रति लाने वाले अपने इस निर्धारित कर्तव्यनिष्ठा वाले रूप में स्वामी जी असाम्प्रदायिक, सार्वभौमिक विचारों को विश्व के सब धर्मों के सामान्य सिद्धान्तों का सोत्साह प्रचार एवं प्रसार करने के कारण सर्वप्रसिद्ध हो गये। इस लौकिक व्यवहार को नियन्त्रित तथा मार्ग-दर्शन करने वाली उस अज्ञात शक्ति ने देश के पुनरुद्धार का कार्य मानो इनके ही भाग्य में लिखा था।

उनको इस क्षेत्र में कितनी सफलता मिली, इसका ज्ञान हर द्रष्टा को है। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यही है कि देश-भर की जनता में जाग्रति आ गयी है जिसने सब धर्मावलम्बियों को प्रभावित किया है। विशेष रूप से वे मध्यम और उच्च श्रेणी के लोग जो पाश्चात्य सभ्यता के पुजारी बनते जा रहे थे, उन पर इस अथक प्रचार का अमिट प्रभाव पड़ा। स्वामी जी के इस प्रचार काह्लह्लस्वदेश के धार्मिक और सांस्कृतिक साहित्य एवं परम्परा के यथोचित महत्त्व और मूल्य के रूप मेंह्लह्लकल्याणकारी रूप स्पष्ट हो गया।

पूर्वाग्रह की भावनाएँ सदैव दृढ़ रहती हैं। गहरी निष्ठाएँ मिटती नहीं। धर्मान्ध व्यक्तियों को अब भी यह विचार जकड़े हुए है कि शास्त्रीय विद्या की सम्पत्ति जिस–तिस को नहीं बाँटी जानी चाहिए और उस भाषा में तो इसका आदान–प्रदान होना ही नहीं चाहिए जो कि विदेश से आयी है। स्वामी जी ने धर्म और आध्यात्मिकता का प्रचार और प्रसार अँगरेजी में किया, इसकी कटु आलोचना और टीका–टिप्पणी कोई कम नहीं हुई। संन्यासी हो कर अविराम रूप से ऐसे कार्य में रत रहने की प्रवृत्ति से कई लोग सहमत नहीं थे। इस आलोचना और टीका–टिप्पणी का स्वामी जी पर लेशमात्र भी प्रभाव नहीं पड़ा। वे अडिग और अविचल रहे। कारण यही कि स्वामी जी के पास निरुद्देश्य विषय सुनने के लिए न समय था और न रुचि। वे अपने समय और श्रम को व्यर्थ ही नहीं गँवाना चाहते थे। ऐसी कटु आलोचना के प्रति अविचलित रहना ही स्वामी जी की स्थिति है।

भारतीय परम्पराओं के प्रति उनकी निष्ठा दृढ़ है; किन्तु साथ ही समय का माँग के अनुसार सुधार करने में वे झिझकते नहीं हैं। जब भी वे देखते हैं कि कोई भी परम्परा अब समय की माँग की पूर्ति नहीं करती और रूढ़ि का रूप धारण करती जा रही है, वे उसी समय अतिरिक्त भावनात्मक बोझ को उठा फेंकते हैं और आवश्यक रूढ़ियों की शल्य–चिकित्सा करने लग जाते हैं। उनका कथन हैह्नह्न''सामाजिक और धार्मिक कुरीतियों को अपनाने में कोई प्रयोजन नहीं है। प्रगति के लिए बौद्धिक उदारता और अनुकूलन–क्षमता की अत्यन्त आवश्यकता है। भगवान् ने मनुष्य को विकास–मार्ग पर सतत गतिशील करने के लिए बनाया है। यदि आचार–विचार स्वस्थ बनाने के लिए परिवर्तनीय सुधार किया जाता है, तो इसका अर्थ यह नहीं कि आदर्शों और मूल सिद्धान्तों का आमूल परिवर्तन भी आवश्यक हो जाता है।''

वे ऐसा भी कहते हैंह्नह्न''अपने सिद्धान्तों में सहिष्णु और पक्षपात–हीन बनो, उदार बनो, विशाल हृदयी बनो। क्षुद्र बातों से ऊपर

उठो। परम्पराओं, कुरीतियों, खान-पान, तिलक-छापों जैसी बातों से ऊपर उठो। अन्तर्भूत आधारों व गहराइयों पर ध्यान दो।'' वर्णाश्रम-धर्म का आदर होना चाहिए और धर्म-शास्त्रों का अनुसरण करना चाहिए, पर साथ ही यह नहीं भूलना चाहिए कि वस्तुएँ तेजी से परिवर्तित होती हैं जो पुराने नियमों की व्याख्या नयी विचारधारा के सन्दर्भ में करवाना चाहती हैं। उदाहरण के लिए संन्यास-धर्म का पालन करने में स्वामी जी लकीर के फकीर नहीं बने और संन्यासी बन्धुओं से इस विषय में उनका मतभेद है।

अब तक यह भ्रम था कि जगत् की दौड़-धूप की अपेक्षा काषाय वस्त्रों की महत्ता बौद्धिक और शारीरिक तपस्या में है। उनके विचार में संन्यासियों को मानवता का गतिशील सेवक और मार्गदर्शक होना चाहिए। वे संन्यासियों को परामर्श देते हैं कि समाज की अधिकाधिक सेवा हेतु अपनी प्रतिभा को सर्वतोमुखी बनाने का प्रतिदिन प्रयत्न करना चाहिए। इस प्रकार उनके विचारानुसार औषधि-ज्ञान, स्वास्थ्य और शरीर-विज्ञान, पत्रकारिता, प्रवचन और संगीत आदि का ज्ञान रखना संन्यास-धर्म के लिए असंगत एवं हानिकर नहीं है। संन्यासी की प्रतिभा बहुमुखी होनी चाहिए ताकि अधिक-से-अधिक व्यक्ति उनके आदर्श का अनुकरण कर सकें। निष्काम सेवा हेतु सर्वांगीण विकास ही उसका चरम लक्ष्य होना चाहिए।

संन्यासी भी विश्व-कल्याण में पर्याप्त योगदान दे सकते हैं। मायावाद के प्रतिपादक श्री शंकराचार्य ने स्वयं अपने अल्प किन्तु स्वर्णिम जीवन में स्थायी सेवा का कार्य किया। इसीलिए स्वामी जी का भी यही आह्वान हैह्वह्व''हे संन्यासियो! जागो! लकीर के फकीर मत बनो। संगठित हो जाओ। आधुनिक विश्व में न्यायोचित ढंग से अपने कर्तव्य की पूर्ति करो। समय के अनुकूल बनो। मिथ्या भ्रम में आ कर शरीर को अस्थि-पंजर मत बनाओ।'' आज के सभ्य कहलाने वाले समाज की बुराइयों का स्वामी जी स्पष्ट एवं अबाध रूप से खण्डन करते हैं। वे अस्पष्ट रूप से कभी कोई बात नहीं कहते। समाज में प्रचलित बाल-विवाह, अनैतिक भ्रष्टाचार, चरम

सीमा की निरक्षरता, दहेज–प्रथा, विवाह और अन्य अवसरों पर धन का अपव्यय आदि अनेक बुराइयों को स्वामी जी ने कलंक कह कर निन्दा की है। उन्होंने हर सम्भव ढंग से इन बुराइयों का समाज से बहिष्कार करने का भरसक प्रयत्न किया है।

एक और अवसर पर उन्होंने उत्साहपूर्वक यह कहाह्नह्न''उपहासास्पद तुच्छ बातों में समय गँवाने से किसी भी महान् उद्देश्य की प्राप्ति नहीं हो सकती है। खान–पान जैसी छोटी बातों पर ही लड़ मरने से क्या आप धर्म की रक्षा कर सकते हैं? जरा ध्यान से सोचिए, यह सब कितना हास्यास्पद लगता है? यदि एक धर्मशाला में दश ब्राह्मण ठहरे हैं, तो वे दशों अलग–अलग रसोईघर में अपना खाना पकायेंगे। एक उपजाति का व्यक्ति दूसरी उपजाति के साथ खाना नहीं खायेगा। ऐसे निरर्थक बन्धनों को निर्दयतापूर्वक तोड़ डालिए।'' समाज–कल्याण हेतु अछूतोद्धार, निरक्षरता–निवारण, पददलित वर्ग के शिक्षण एवं प्रशिक्षण तथा निष्काम सेवा के लिए राष्ट्रीय संस्थान स्थापित करना आदि सेवाएँ करना उनकी हार्दिक अभिलाषा है।

अब प्रश्न यह उठता है कि जब उनके जीवन का चरम लक्ष्य आध्यात्मिक जागरण है, तो इन सब विषयों का उससे क्या सम्बन्ध? उनके प्रमुख कार्य में इनका स्थान किस तरह उपयुक्त है? इसके उत्तर के लिए कहीं दूर नहीं जाना पड़ेगा। वास्तविक आध्यात्मिक वृद्धि व प्रगति के लिए कुछ निश्चित स्थितियाँ एवं निश्चित नैतिक मूल्य प्राथमिक आवश्यकताएँ हैं। व्यक्तिगत व सामाजिक सुरक्षा, प्रचुर मात्रा में व्यावसायिक ज्ञान, ईमानदारी से जीवन–यापन और आर्थिक स्वतन्त्रता के लिए अत्यन्त आवश्यक है। देश में शान्ति व स्थिरता का वातावरण, उच्च कोटि का राष्ट्रीय स्वास्थ्य आदि तत्त्व देश में आध्यात्मिकता की रुचि उत्पन्न करने के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं।

आध्यात्मिक प्रगति का अर्थ हैह्लह्लप्रेम, एकता, सहनशीलता और समदृष्टि की प्राप्ति। जब तक स्वार्थपूर्ण जाति-पाँति का भेद-भाव और साम्प्रदायिकता के क्षुद्र बन्धन नहीं टूटेंगे और यथोचित क्षेत्र तैयार नहीं होगा, तब तक आध्यात्मिक प्रचार एक दिखावा मात्र रहेगा। परिणाम-स्वरूप एक धार्मिक उपदेशक, आध्यात्मिक प्रचारक को समाज-सुधार में भी योगदान देना चाहिए। स्वामी जी में इन दोनों रूपों का समन्वय है। वे दोनों का प्रचार-कार्य इस प्रकार साथ-ही-साथ करते हैं कि अन्ततः बल आध्यात्मिक पहलू पर ही पड़ता है। इन दो तथ्यों के अतिरिक्त स्वामी जी का एक और महत्त्वपूर्ण रूप है और वह हैह्लह्लसनातन धर्म के पुनरुत्थान (Revival) की परम्परा को विवेकपूर्वक अनिवार्य रूप से बनाये रखना।

भारत को भावी विश्व की आध्यात्मिक जननी होने के लिए हिन्दू-धर्म को प्रभावशाली और जीवन्त शक्ति बनाना होगा। बंगाल के सुदूर देहात की एक विनम्र कुटिया में आज से सौ वर्ष पहले हिन्दू-धर्म के पुनरुत्थान की प्रबल भावना भड़की। इस भड़कती ज्वाला ने दो हजार वर्ष की आध्यात्मिकता और संस्कृति में ऐसी विद्युच्छक्ति का संचार किया जिससे युवा वर्ग को नयी दिशा मिली और जिसने शताब्दियों पुरानी जड़ता व निद्रा को दूर कर आध्यात्मिक सम्पत्ति के प्रति उनकी उदासीनता से उन्हें जाग्रत किया। पर जब तक जनता पूरी तरह जाग्रत हो और जड़ता से अपने को पूर्णतया मुक्त करे, तब तक वह देदीप्यमान ज्योति भी विलीन हो गयी। उस साहसी योगी स्वामी विवेकानन्द का जीवन जितना अधिक ज्योतित था, उतना ही अल्प था। ज्वार-भाटा के प्रवाह की दिशा तो बदल गयी थी, पर धारा-प्रवाह को अजस्र बनाये रखने की अत्यन्त आवश्यकता थी।

अतः जनता की मोह-निद्रा को दूर कर आध्यात्मिकता को क्रियाशील व गतिशील बनाने के अत्यन्त महान् कार्य के लिए वर्तमान समय में विधाता को मानो स्वामी जी ही सर्वाधिक उपयुक्त व्यक्ति मिले।

मुझे भी ऐसा ही प्रतीत होता है कि इस उच्च आदर्श की पूर्ति के लिए स्वामी जी सर्वाधिक उपयुक्त हैं, क्योंकि सतत कार्यशील रहना, विश्रान्ति को पास न फटकने देना उनका एक दैवी गुण है। देश को इनके रूप में धार्मिक चेतना की शान्त, अजस्र परन्तु वेगवती धारा मिली है।

पूजा-मण्डप का विस्तार

दिव्य जीवन संघ की जो और शाखाएँ हैं तथा जो निष्काम सेवक हैं, वे इस भव्य विश्व-पूजा में भाग्यशाली सहायक हैं। स्वामी जी के जीवनोद्देश्य के व्यापक पहलुओं को जीवन्त रखने व विकसित करने का काम इस संघ की कई शाखाओं एवं इनके निष्काम सेवक और उत्साही, अनुरागी भक्त-मण्डली द्वारा हो रहा है। कई साधक, जिनको स्वामी जी में पूर्ण निष्ठा है, व्यक्तिगत रूप से इस आदर्श के अनुसरण द्वारा जनता के सामने उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं। इस सत्यता की साक्षी संघ की अनेक शाखाएँ और उनके कार्य-विस्तार की सफलताएँ हैं। इसका दूसरा रूप हैह्नह्नभारतवासियों की कृतज्ञतापूर्ण पुकार। वे स्वामी जी के अथक परिश्रम का आशातीत लाभ उठा कर हार्दिक कृतज्ञता तथा प्रशंसा के रूप में अपने भावों का प्रकटीकरण कर रहे हैं। उनके इस धैर्यपूर्वक किये गये शोध के सुपरिणाम के प्रति हार्दिक आभार को लोगों ने व्यक्तिगत रूप में पत्र-व्यवहार तथा समाचार-पत्रों द्वारा प्रकट किया है।

स्वामी जी ने भी दृढ़ संकल्पानुसार गंगा-तट स्थित छोटी-से कुटीर में ही रह कर गंगा माता के प्रति आदर तथा प्रेम का परिचय दिया है। कुटीर में रह कर ही दिव्य प्रेम, निष्काम सेवा तथा सत्यता की प्रेरणा देने का कार्य देश के कोने-कोने में ही नहीं, अपितु सुदूर दक्षिण कोलम्बो तथा जाफना, उत्तर में श्रीनगर तथा पेशावर पर्यन्त किया है। विभिन्न स्थानों की दिव्य जीवन की शाखाएँ आध्यात्मिकता का प्रसार बड़े उत्साह और तीव्रता से

कर रही हैं। इसका प्रमाण अनेकों साधकों द्वारा स्वामी जी के पास भेजी गयी आध्यात्मिक दैनन्दिनी व नियमित साधना की जानकारियाँ हैं।

पूर्व में संघाई, रंगून और प्रॉम में संस्थापित दिव्य जीवन संघ की शाखाओं से स्फूर्तिदायक कार्यों के उत्साहवर्धक प्रतिवेदन मिल रहे हैं। युद्ध के कारण आवागमन में अवरोध उपस्थित होने से आजकल परस्पर सम्पर्क स्थापित करना कठिन हो गया है जिससे उनकी प्रगति के विषय में कुछ ज्ञात होना असम्भव है। रंगून से प्राप्त समाचार के अनुसार वहाँ नित्य-प्रति वेद-पाठ, साप्ताहिक गीता की कक्षाएँ, रविवारीय यज्ञ-हवन का कार्यक्रम चलता है। पश्चिमी सागर के पार भी फारस की खाड़ी के पास बेहरीन (Behrein) तक तथा ब्रिटिश ईस्ट अफ्रीका में इससे भी अधिक उत्साह से 'दिव्य जीवन संघ' की शाखाओं का कार्य चल रहा है।

भारत के प्रमुख नगरों में जहाँ के लोग लक्ष्मी के पुजारी बन गये हैं, वहाँ भी दिव्य जीवन का प्रसार हो रहा है और उन लोगों में आध्यात्मिकता का बीज बोया जा रहा है। अतः हर्ष का विषय है कि बम्बई, कलकत्ता, लाहौर (अब पाकिस्तान में), मद्रास, मैसूर, बैंगलोर, दिल्ली, पटना, कराची (पाकिस्तान), अहमदाबाद, मेहसाना आदि नगरों में दिव्य जीवन का प्रसार हो रहा है। पूना, नागपुर, बरार, सियालकोट (पाकिस्तान), अमृतसर, इलाहाबाद, रावलपिण्डी (पाकिस्तान), त्रिची, त्रिवेन्द्रम, सेलम, मैटूपलायम, कुण्डापुर, कारकल, नरोल, विशाखापट्टम आदि शहरों में लोग अगाध निष्ठा से इस कार्य में रुचि ले रहे हैं। कुछ केन्द्रों में रात्रि-कक्षाएँ, कुछ में धर्मार्थ औषधालय तथा कुछ में निर्धनों को भोजन देने के कार्यक्रम सफलता से चल रहे हैं। इस प्रकार वे सब लोग व्यावहारिक आध्यात्मिक साधना का कार्यक्रम सम्पन्न कर रहे हैं।

भारत के सुदूर नगरों तथा गाँवों में लोग पारस्परिक वार्ता हेतु संगोष्ठी का नियमित रूप से आयोजन करते हैं ताकि स्वामी जी द्वारा बतायी गयी

साधना और निष्काम सेवा का कार्य सुचारु और सामूहिक रूप से हो सके। ऐसे लोग जिनके जीवन में साधना नाम का अंश भी न था, अब ब्राह्ममुहूर्त में ४ बजे उठना, निर्धारित आसन पर बैठ कर माला जपना तथा इष्टदेव के दिव्य नाम का स्मरण करना अच्छी तरह सीख गये हैं।

श्रीमद्भगवद्गीता, रामायण तथा श्रीमद्भागवत आदि जो ग्रन्थ विस्मृति के गर्त में थे, उनका पाठ, स्वाध्याय, अध्ययन और मनन आरम्भ हो गया है, जिससे उन पर वर्षों से जमी धूल हट गयी है, ताजी हवा का संस्पर्श हुआ है और फिर से नये वस्त्रों में लपेट कर रखने से उनका हार्दिक स्वागत हुआ है। सहस्रों साधकों ने लिखित जप में रुचि ले कर कितनी ही अछूती मन्त्र-पुस्तिकाओं के पन्ने-के-पन्ने भर डाले। लिखित जप की सर्वाधिक प्रेरणा स्वामी जी से ही मिली। उसी का परिणाम है कि मुख्यालय में साधकों द्वारा भेजे गये मन्त्र-पुस्तिकाओं के बण्डल-के-बण्डल प्राप्त हो रहे हैं। अभी पिछले दिनों बम्बई की एक सम्भ्रान्त महिला ने करोड़ों की संख्या में 'राम-कोटि' राम-राम लिख कर ताँबे की पेटी में रख कर भेजा है।

आसनों के अभ्यास में भी वृद्ध, युवाह्वह्वसभी वर्ग के लोग रुचि ले कर आशातीत लाभान्वित हो रहे हैं। नित्य-प्रति कीर्तन तथा साप्ताहिक प्रवचन का आयोजन भी होता है। यह समुदाय ही दिव्य जीवन संघ के विभिन्न केन्द्रों का रूप धारण कर दिव्य जीवन सम्बन्धी सार्वभौमिक तत्त्वों के पुण्य-कार्यों का संचालन कर रहे हैं। स्वामी जी ने स्वयं भी अपने इस महत्त्वपूर्ण कार्य के विस्तार की इतनी कल्पना न की होगी, पर विधाता ने भी आसुरी-सम्पत्ति के विरुद्ध दिव्य जीवन का सशक्त शस्त्र उठा लिया है। अतः इसने अहिंसा, सत्य और ब्रह्मचर्य आदि तत्त्वों का आश्रय ले कर धन-दौलत तथा भौतिकवाद के विरुद्ध अभियान आरम्भ कर दिया है।

आध्यात्मिक साहित्य तथा ज्ञान के प्रसार हेतु वाचनालय एवं पुस्तकालय पर्याप्त सफल साधन सिद्ध हुए हैं। औषधालयों, चिकित्सालयों की व्यवस्था कई केन्द्रों में की गयी है। समस्त केन्द्रों में कार्य स्वेच्छा एवं विशुद्ध प्रेम से हो रहा है। इन सब विविध आयोजनों के केन्द्र-बिन्दु स्वामी जी हैं जो अपने आश्रम में रह कर भी आध्यात्मिक ऊर्जा-केन्द्र की भाँति सब श्रेय मातृ-शक्ति को ही देते हैं।''प्रकृति ही इस भव्य नाटक की सूत्रधार है। मैं क्या कर रहा हूँ? मैं तो स्वयं को यन्त्र मात्र समझता हूँ जिसका चयन मातृ-शक्ति ने किया है। हाँ, जब तक उसकी इच्छा है, मैं इस कार्य को गतिमान करता रहूँगा। यदि उसकी इच्छा होगी, तो इसको जारी रखेगी। मुझे इस विषय में किंचिन्मात्र भी चिन्ता नहीं है। **मेरी इतनी प्रार्थना अवश्य है कि मैं मृत्यु-पर्यन्त अपनी इस आराधना और निष्काम सेवा-पूजा में संलग्न रहूँ।**''

''**जिज्ञासुओं और साधकों की निष्काम सेवा ही मेरे विचार में ईश्वर की सच्ची पूजा है।** इनकी जिज्ञासा की पिपासा को शान्त करना ही मेरी योग-साधना है और इसी में आत्म-साक्षात्कार है। सब-कुछ इसी में निहित है।''